ISSN 2320 - 4494
RNI No. MAHAUL03008/13/1/2012-TC

POWER OF KNOWLEDGE

An International Multilingual Quarterly Refereed Research Journal

Volume : I Issue : XVI Oct.-Dec. 2016

ARTS | COMMERCE | SCIENCE | AGRICULTURE | EDUCATION | MANAGEMENT | MEDICAL | ENGINEERING & IT | LAW | SOCIAL SCIENCES | PHYSICAL EDUCATION | JOURNALISM | PHARMACY

Editor
Sarkate Sadashiv Haribhau
Email : powerofknowledge3@gmail.com, shsarkate@gmail.com

Scanned with CamScanner

अनुक्रमाणिका

अ.क्र.	प्रकरण	संशोधक	पृष्ठ क्रं.
१	Moral Degradation of Shakuntala in Namita Gokhale's 'Shakuntala The Play of Memory'	Dr. Beena V. Rathi Hematai Ramrao Shete	६
२	Portrayal of Women Characters in the novels of Namita Gokhale	Dr. Beena V. Rathi Hematai Ramrao Shete	१०
३	Internet Based Library Services: An overview	Dr. Kalayan N. Kumbhar Dr.Hariprasad Bidve	१४
४	डॉ. प्रतिमा इंगोले यांच्या कथासंग्रहातील भाषिक सौंदर्य - एक शोध	प्रा. गायत्री गाडेकर	२०
५	दलित स्त्री आत्मकथनातील आंबेडकरी जाणिवा	प्रा.डॉ.सिरसाट मनोहर प्रा. अरुणकुमार लेमाडे	२७
६	जागतिकीकरण, शेतकऱ्यांच्या समस्या आणि मराठी कादंबरी	डॉ.रामचंद्र काळुंखे	३१
७	हैद्राबाद मुक्तिसंग्रामातील विद्यार्थ्यांची कार्मागरी	प्रा.डॉ.सौ. सुषमा देशपांडे	३७
८	लोककथांचे पौराणिक दृष्टिकोणातून संशोधन	प्रा.डॉ.गिते लक्ष्मण बलभीम	४१
९	हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य	संतोष नागरे	४५

Scanned with CamScanner

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य

संतोष नागरे
सहा.प्रा.- हिन्दी विभाग
र.भ.अट्टल महाविद्यालय,
गेवराई जि.बीड

स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा के रुप में विकसित हुआ। व्यंग्यकार व्यंग्य के माध्यम से जीवन की विसंगतियों को उजागर कर सत्य से अवगत कराता है। जिसका मूल उद्देश्य है- समाज परिवर्तन। हरिशंकर परसाई व्यंग्य के संदर्भ में कहते हैं,- "सही व्यंग्य जीवन परिवेश को समझने से आता है। व्यापक सामाजिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश की विसंगति, मिथ्याचार, असामंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना, कारणों का विश्लेषण करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखना इससे सही व्यंग्य बनता है। जरुरी नही कि व्यंग्य में हँसी आये। यदि व्यंग्य चेतना को झकझोरे देता है, विद्रुप को सामने खड़ा कर देता है। आत्म साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सडांध को इंगित करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है, तो वह सफल व्यंग्य है।"[1]

स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ अंकन हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्य साहित्य में हुआ है। हरिशंकर परसाई जी की सूक्ष्म पैनी नजर से जीवन का कोई भी पहलू अछूता नहीं रहा। परसाई जी का व्यंग्य साहित्य शोषितों, पीडितों को आँख देनेवाला है। इसलिए परसाई व्यंग्य के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान रखते हैं। केदारनाथ अग्रवाल हरिशंकर परसाई के व्यंग्य के संदर्भ में ठीक ही कहते हैं,- "यह व्यंग्य बेलास, निर्भीक, सच का साथी, झूठ का दुश्मन और लुके-छिपे हुए तथाकथित अभिजात्यवर्गिय, शक्तिसम्पन्न महाप्रभुओं की कलई खोलनेवाला व्यंग्य है और दलित, दमित और पीडित, दीन हीन शोषितों को आँख देनेवाला और करनी से समाज को बदलने का और राजनीति को समाजवादी बनाने के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। हरिशंकर परसाई के व्यंग्य यही सब करते हैं। इसलिए वे दूसरे व्यंग्यकारों से अलग राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व रखते हैं, और इसी में उनकी लोकप्रियता निहित हैं।"[2]

स्वातंत्र्योत्तर भारत की दुरावस्था का यथार्थ अंकन हरिशंकर परसाई के व्यंग्य साहित्य में दृष्टिगत होता है। आजादी के पश्चात हमनें प्रजातंत्र अपनाया। दुर्भाग्य से यह प्रजातंत्र भेंडिया और भेडतंत्र बनकर रह गया। राजनेता रक्षक की जगह भक्षक बन गए। हरिशंकर परसाई भेंडिए तंत्र पर प्रहार करते हुए कहते हैं,- "और अब पंचायत का चुनाव हुआ, तो भेड़ों ने अपनी हित रक्षा के लिए भेडिए को चुना। और पंचायत में भेडों के हितों की रक्षा के लिए भेडिऐं प्रतिनिधि बनकर गए। और पंचायत में भेंडियों ने भेडों के हितों के लिए पहला कानून यह बनाया- हर भेंडियें को सबेरे नाश्ते के लिए भेड का एक मुलायम बच्चा दिया जाए, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड तथा शाम को स्वास्थ्य के खयाल में कम खाना चाहिए, इसलिए आधी भेड दी जाए।"[3] स्वातंत्र्योत्तर काल में यह खाने की परम्परा फल-फूल रही है। भ्रष्टाचार का नया सौंदर्यशास्त्र लिखा जा रहा है। मूल्यों को त्यागकर अनीति और बेईमानी के मार्ग से पैसा कमाना आज प्रतिष्ठा का लक्षण माना जा रहा है। ईमानदारी बेहाल है तो बेईमानी मालामाल है। हरिशंकर परसाई 'बेईमानी की परत' में इसकी पोल खोलते हुए कहते हैं,- "रोटी खाने से कोई मोटा नहीं होता, चंदा या घूस खाने से मोटा होता है। बेईमानी के पैसे में ही पोष्टिक तत्व बचे हैं।"[4]

आजादी के अड़सठ साल बाद भी अपने कृषिप्रधान देश में आम आदमी दो जून की रोटी के लिए मोहताज है। एक

Scanned with CamScanner

ओर खाने के लिए अन्न नहीं है वहीं दूसरी ओर सरकारी गोदामों में अनाज सड़ रहा है। आदिवासी क्षेत्र में कुपोषण की गंभीर समस्या है। अनाजों की कालाबाजारी एवं मुनाफाखोरी हो रही है। मुनाफाखोरी से जरुरी चीजों की कीमतें आसमान छुने लगी है। मुनाफाखोरों, कालाबाजारियों तथा भ्रष्टाचारियों ने राज्यों की सीमाओं का उल्लंघन कर राष्ट्र को एक कर दिया है। हरिशंकर परसाई 'अन्न की मौत' व्यंग्य में कहते हैं,- भूखमरी और भ्रष्टाचार हमारी राष्ट्रीय एकता के सबसे ताकतवर तत्व बन गए है। धर्म, संस्कृति ओर दर्शन कमजोर पड़ गए है। कैसी अद्भूत एकता है। पंजाब का गेहूँ गुजरात के कालाबाजार में बिकता है और मध्यप्रदेश का चावल कलकत्ता के मुनाफाखोर के गोदाम में भरा है। देश एक है। कानपुर का ठग मदुराई में ठगी करता है। हिन्दी भाषी जेबकतरा तमिलभाषी की जेब काटता है और रामेश्वरम का भक्त बद्रीनाथ का सोना चुराने चल पड़ा है। सब सीमाएँ टूट गई। अब जरुरी नहीं है कि हैद्राबाद का रेड्डी वहीं भूखा मरें। वह पटना में भी मर सकता है, क्योंकि देश एक है। मुनाफाखोरों, कालाबाजारियों, भ्रष्टाचारियों ने मिलकर राष्ट्र को एक कर दिया है।"[५]

मार्क्स ने धर्म को अफिम का नशा कहा। वर्तमान समय में अध्यात्म का बाजार भी फल-फूल रहा है। स्वयंघोषित बाबाओं, संतों, माँ तथा साध्वियों की संख्या बढ़ रही है। जो अपने आप को भगवान का अवतार मानने लगे हैं। संतों को आचरण की जीवंत पाठशाला माना जाता था। दुर्भाग्य से जिन्हें पथदर्शक होना चाहिए वे ही पथ भ्रष्ट हो रहे हैं। धर्म के नाम पर समाज में अंधविश्वास, भाग्यवादिता, कर्मकांड, अवैज्ञानिकता फैलाकर स्वयंघोषित संत जनता की श्रध्दा और विश्वास के साथ खेल रहे हैं। वे जनता को जगाने की अपेक्षा उन्हें सुलाने का काम कर रहे हैं। हरिशंकर परसाई इस संदर्भ में कहते हैं,- "इन दिनों यज्ञों की बाढ आई है, नए-नए भगवान और देवियाँ अवतार ले रहे हैं। चमत्कार का दावा करनेवाले लोग प्रकट हो रहे हैं। यह अनायास नहीं है। इसके पीछे योजना है। इस योजना के पीछे उद्देश्य है- जनता को पिछडा हुआ रखना, उसकी समझ को वैज्ञानिक न होने देना, उसे अन्धविश्वासी और दकियानूस रखना, उसे भाग्यवादी और संघर्षहीन बनाना। कुछ उद्देश्य है कि लोग परिवर्तन कामी न हों, वे सड़ी-गली व्यवस्था से विद्रोह न करें। शोषक वर्ग सामान्य जन का बेखटके शोषण करता रहे। यह एक देशव्यापी षडयंत्र है, जिसमें राजनीतिज्ञ, सरमायेदार, बुध्दिजीवी आदि शामिल है।"[६]

प्रजातंत्र में योग्यता की अपेक्षा लोकप्रियता को अहमियत दी जाती है। इसलिए जुए के फड चलानेवाले, शराबखोरी, गुण्डागिरी करनेवाले अपराधिक जगत के बाहुबली बड़े-बड़े निर्वाचित पदों को सुशोभित किये हुए हैं। पुलिस अपराधी को छोड़कर निर्दोष को सताने में ही अपना कर्तव्य समझ रही है। न्याय-व्यवस्था बहरी है, जो सत्य की आवाज सुन नहीं सकती। आँख के साथ-साथ उसने अपने कान और जुबान को भी बंद कर रखा है। अध्यापक ज्ञान-दान जैसे पवित्र कार्य को छोड़कर अर्थार्जन के पीछे दौड़ रहे है। हरिशंकर परसाई आज की इन विसंगतियों को बेनकाब करते हुए कहते हैं,- "यह मिसफिट्स का युग है भाई! जिसे जुआडखाना चलाना चाहिए वह मंत्री है, जिसे डाकू होना चाहिए वह पुलिस अफसर है, जिसे दलाल होना चाहिए वह प्रोफेसर है, जिसे जेल में होना चाहिए वह मजिस्ट्रेट है, जिसे कथावाचक होना चाहिए वह उपकुलपति है। जिसे जहाँ नहीं होना चाहिए वह ठीक वहीं है।"[७]

वैश्वीकरण विज्ञापन का युग है। विज्ञापन जगत नारी बिना अधूरा है। विज्ञापन में नारी मन की अपेक्षा तन का ही प्रदर्शन अधिक है। विज्ञापन जगत ने नारी को उपभोग्य वस्तु बना दिया है। वैश्वीकरण के इस दौर में सुन्दर स्त्री के जीवन का महान उद्देश्य है- अपनी सौन्दर्यरुपी मोहिनीशक्ति के माध्यम से ग्राहकों को फुसलाकर कम्पनी का रद्दी सामान बिकवाना। हरिशंकर परसाई 'विज्ञापन में बिकती नारी' इस व्यंग्य में कहते हैं,- "ऐसा लगता है सारी अर्थ-व्यवस्था पर नारी सौन्दर्य ने

Scanned with CamScanner

कब्जा कर रखा है।"[८] विज्ञापन से बुध्दि, विद्या तथा चरित्र का अवमूल्यन हो रहा है। वैश्वीकरण से उपजी नयी उपभोक्तावादी संस्कृति में मनुष्य अगर उपभोक्ता नहीं है तो उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है। उस नयी संस्कृति में उपभोक्ता ही मनुष्य है। हरिशंकर परसाई 'लुच्चन की भीड़' में उसकी पोल खोलते हुए कहते हैं,- "जो उपभोक्ता नहीं है, उस मनुष्य का हमारे लिए कोई महत्व नहीं है। हमारा कर्तव्य है हम उपभोक्ता बढ़ाएँ, उनकी हैसियत बढ़ाएँ। मनुष्य जाति की परम्परा कायम रहे, जिससे हमें उपभोक्ता मिलते जाएँ।"[९]

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति में हम अपनी संस्कृति की जड़ से कट रहे हैं। विदेशी पाश्चात्य संस्कृति हम पर हावी होती जा रही है। प्रेम का स्थान पैसे ने ले लिया है। रिश्ते-नातों में व्यावहारिकता हावी होने लगी है। परिणामतः परिवार टूट रहे हैं। वृध्दाश्रमों की संख्या बढ़ रही है। खान-पान, रहन-सहन, विचार बदल रहे हैं। डे संस्कृति हमारी परम्पराओं को डेड कर रही है। उपदेव मूल्य बढ़ रहा है। मानवता, भाईचारा सामाजिक ऐक्य के अभाव में सामाजिक स्वास्थ नष्ट हो रहा है। जनता की नयी संस्कृति पर व्यंग्य करते हुए हरिशंकर परसाई कहते हैं,- "जनता की नयी संस्कृति यानी ओछापन, टुच्चापन, उथलापन, नीचता, कमीनापन, नफरत, अंधविश्वास, अशिष्टता, दोमुँहापन!"[१०]

निष्कर्ष :-

हरिशंकर परसाई जी ने अपने व्यंग्य साहित्य के माध्यम से भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों की विसंगतियों को पूरी ईमानदारी के साथ बेनकाब किया। अतः हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य स्वातंत्र्योत्तर भारत की व्यथा-कथा का जीवंत दस्तावेज है।

संदर्भ ग्रंथ :-

१. सम्पा.डॉ.आलोक गुप्त, गद्य-प्रभा, पृ.६७-६८
२. केदारनाथ अग्रवाल, विचार-बोध, पृ.१६७
३. सम्पा.डॉ.शंभुनाथ तिवारी, शोध और समीक्षा के विविध आयाम, पृ.२९०
४. हरिशंकर परसाई, काग भगोड़ा, पृ.५२
५. सम्पा.डॉ.निर्मला जैन, निबन्धों की दुनियाँ: हरिशंकर परसाई, पृ.८२
६. वही, वही, पृ.५७
७. वही, वही, पृ.६६
८. वही, वही, पृ.१०८
९. वही, वही, पृ.११९
१०. वही, वही, पृ.३३

Scanned with CamScanner